अन्तर्वेदना के स्वर

डॉ. राममूर्ति त्रिपाठी

अंतर्वेदना के स्वर

डॉ. राममूर्ति त्रिपाठी

राजमंगल प्रकाशन
An Imprint of **Rajmangal Publishers**

विषय सूची

शीर्षक पृष्ठ

Antarvedana Ke Swar

Rajmangal Publishers

अनुक्रमणिका

ईश वन्दना

भूमिका

मंगलवाक

रचनाकार की क़लम से

आभार

रचना के संदर्भ में विचार

अन्तर्वेदना के स्वर

ISBN : 978-8194617006
Published by :

Rajmangal Publishers

Rajmangal Prakashan Building,
1st Street, Sangwan, Quarsi, Ramghat Road
Aligarh-202001, (UP) INDIA
Cont. No. +91- 7017993445
www.rajmangalpublishers.com
rajmangalpublishers@gmail.com
sampadak@rajmangalpublishers.in

प्रथम संस्करण : मई 2020
प्रकाशक : राजमंगल प्रकाशन
राजमंगल प्रकाशन बिल्डिंग, 1st स्ट्रीट,
सांगवान, क्वार्सी, रामघाट रोड,
अलीगढ़, उप्र. – 202001, भारत
फ़ोन : +91 - 7017993445

First Published : May. 2020
eBook by : Rajmangal ePublishers (Digital Publishing Division)
Cover Design : Rajmangal Arts
Copyright © डॉ. राममूर्ति त्रिपाठी

This is a work of fiction. Names, characters, businesses, places, events, locales, and incidents are either the products of the author’s imagination or used in a fictitious manner. Any resemblance to actual persons, living or dead, or actual events is purely coincidental. This book is sold subject to the condition that it shall not, by way of trade or otherwise, be lent, resold, hired out, or otherwise circulated without the publisher’s prior consent in any form of binding or cover other than that in which it is published and without a similar condition including this condition being imposed on the subsequent purchaser. Under no circumstances may any part of this book be photocopied for resale. The printer/publishers, distributer of this book are not in any way responsible for the view expressed by author in this book. All disputes are subject to arbitration, legal action if any are subject to the jurisdiction of courts of Aligarh, Uttar Pradesh, India.

अनुक्रमणिका

शीर्षक

- ईश वन्दना
- भूमिका
- मंगलवाक
- रचनाकार की क़लम से
- आभार
- रचना के संदर्भ में विचार
- अन्तर्वेदना के स्वर

~~

~~

माता–पिता
व
गुरु
और
समसामयिक परिस्थितियों
को समर्पित
जिनकी प्रेरणा से रचना
“अंतर्वेदना के स्वर”
प्रकाश में आयी।

~~

ऐसे ही दुर्लभ उपन्यास (Novel) ,

प्रेरणादायक पुस्तक

(Motivational Book) ,

प्रीमियम बुक , प्रीमियम मैगजीन ,

और अन्य सभी तरह के ,

कहीं पर भी ना मिल पाने वाले

उपन्यास

और साहित्य को पढ़ने के लिए हमारे

टेलीग्राम ग्रुप और चैनल में

अवश्य जुड़े ।

नीचे दिए गए लिंक के माध्यम से

आप हमारे ग्रुप और चैनल

में जुड़ सकते हैं

https://t.me/hindilibrary

https://t.me/requestbookpdf

चैनल में जुड़ने के लिए

लिंक पर Click करें👇👇👇

https://t.me/books_request

English Books 📚

https://t.me/Google_Ebooks

ईश वन्दना

कि‍तना और चलूँ मैं संग में, भर जाए जी मेरा-तेरा,
इच्छाएँ अनन्त होती, कभी न पूरी होती हैं,
मन की गहराई में, ये अनमोल पलों के मोती हैं,
भीड़ भरा सारा जीवन, कब से बाट जोह रहा,
कितना चलूँ-भजूँ आगे, अन्तर्मन निचोड़ रहा,
अभी पवित्र भाव बचा है, मन में है उत्साह,
कितना और सँवारू मन को, भर जाए जी मेरा-तेरा।
तन एकाकी मन बरचस, ढूँढ़ रहा कोने-कोने,
कभी मिलेंगे किसी छोर पर, तन मन को धोते-धोते,
चेतन मन अचेतन बन, कब से बाट देख रहा,
रे वसुधा के प्राण स्रोत, क्या डूबा हुआ उकेर रहा,
कितना और डुबूँ मैं अब, मिल जाए पग मेरा-तेरा.
मैं तो अहर्निश सदा चला, तुम मिलने से विदक रहे,
मन में निश्छल प्रीत अमर, क्यों काहे को ठिठक रहे,
मेरा अनुगमन सँभालों, बना हुआ हूँ भक्त तुम्हारा,
रे पत्थर के देव तुम्हें, पा लूँगा संकल्प हमारा
भक्ति भाव से तब तक जागूँ, जब तक होगा नहीं सवेरा,
कितना और करूँ मैं तप, संग छूटे ना मेरा-तेरा।

- डॉ. राममूर्ति त्रिपाठी

~~

भूमिका

र ामचरित मानस में गोस्वामी तुलसीदास द्वारा प्रेम की महिमा का वर्णन करते हुए कहा गया है कि सारी समस्याओं का समाधान प्रेम में ही समाहित है। प्रेम के द्वारा हम ईश्वर को भी प्राप्त कर सकते हैं। ईश्वर प्राप्त का सहज मार्ग प्रेम को ही बताया है।

मानस से-

"हरि व्यापक सर्वत्र सामना।
प्रेम ते प्रगट होहि मैं जाना।"

प्रेम की महिमा को प्रतिपादित करते हुए संत कबीर साहब लिखते है कि-

"पोथी पढ़ि-पढ़ि जग मुआ, पंडित भया न कोय।
ढाई आखर प्रेम का, पढ़े सो पंडित होय।।"

रचनाकार डॉ. राममूर्ति त्रिपाठी द्वारा रचित "अन्तर्वेदना के स्वर" में सारी समस्याओं का समाधान प्रेम में ही निहित है बताया गया है। कटु भौतिकवाद के अवांच्छनीय एवं अरुचिकर धरातल पर जहाँ मानवता का करुण क्रंदन सुनकर करुणा को भी करुणा आ रही हो ऐसे में डॉ. राममूर्ति त्रिपाठी की लेखनी द्वारा यदि "अन्तर्वेदना के स्वर" उनके मानस को आंदोलित करते हुए निस्सरित होते हैं तो स्वभाविक ही है क्योंकि रचनाकार उस काल के हैं जिसमें संयुक्त परिवार की महत्ता हुआ करती थी।

लोक लाज, मर्यादा का पालन होता था। लोगों का जीवन अनुशाषित था। परिवार के लोग मुखिया के अनुशासन में रहते थे। वहाँ स्व के लिए कुछ नही था, जो था समग्र के लिए समभाव। घर में चाहे डॉक्टर हो, इंजीनियर हो, कृषक हो सबके बच्चों की शिक्षा-दीक्षा, शादी-विवाह एक सामान आवश्यक आवश्यकता के अनुरूप खर्च किया जाता था। परिवार के लोग संस्कारवान होते थे। प्रत्येक युवा बड़े बुजुर्गों का आदर सम्मान करता था। वह यह संस्कार संयुक्त परिवार से प्राप्त किया था। जैसा की हमारे धर्मशात्रों में वर्णित है-

'अभिवादनशीलस्य, नित्यं वृद्धोंपसेविनः।
चत्वारि तस्य वर्द्धन्ते, आयुर्विद्या यशो बलम्।।'

संयुक्त परिवार आदर्श नागरिकता की प्रथम पाठशाला है। यही से हम रामचरित मानस की उन पंक्तियों को आत्मसात कर आदर्श नागरिकता की ओर अग्रसर होते हैं-

प्रातः काल उठि के रघुनाथा।
नावहि मातु-पिता गुरु माथा।।

यही से हमें संस्कार प्राप्त होता है।

वर्तमान में संस्कार विलुप्त सा हो गया है। व्यक्तिवाद समाज में बहुत तेजी से पनपा है। छोटे-बड़े का मान-सम्मान कम दिखाई दे रहा है। परिणामतः आज पारिवारिक जीवन जीना दूभर-सा हो गया है। परिवार से तात्पर्य पति-पत्नी और मात्र बच्चों तक सीमित हो गया है। घर में बहू संस्कारवान नही, रूपवान, गुणवान नही, अर्थवान लायी जा रही है जिससे घर में आते ही जो घर मंदिर था श्मशान हो जाता है।

आये दिन पति-पत्नी, सास-बहू, ससुर-बहू में वाद-विवाद कलह दिखाई देता है। इसी पीड़ा से पीड़ित डॉ. राममूर्ति त्रिपाठी के स्वर "अन्तर्वेदना के स्वर" में मुखरित है। एक लाड प्यार में पली संस्कार विहीन बहू के व्यवहार में कैसे परिवर्तन लाकर उसे सद्मार्ग पर लाया जाये कवि के भाव देखें-

कितना प्यार तुझे मैं दे दूँ,
हो जाओ तुम मन की मेरे।
आखिर मैंने कौन कर्म कर,
पाया तुम जैसी पत्नी।

परिवार की हर बात उसे उल्टी प्रतीत होती है। कवि कहता है कि लाख प्रयास पर भी वह समझती नही देखें-

जब भी मैं अच्छा कहता हूँ,
उसका उल्टा सदा किया है।
चलना ही प्रतिकुल हमारे,
सदा रहा है लक्ष्य तुम्हारा।

ऐसी औरतें मनमानी भी करती हैं। कवि व्यथित मन से कहता है -

बड़ी प्रवीणा हो तुम मन की,
अपना काम बना लेती हो।
मेरी बारी जब आती है,
चेहरा तब लटका लेती हो।

पत्नी को सद्मार्ग पर लाने में पति सदा तत्पर रहता है। धैर्य से काम लेता है। कभी भी क्रोध नही करता। उसे तो अपने लक्ष्य प्राप्त करना है देखें-

पर उत्साह नही हारा हूँ,
चलते जाना लक्ष्य हमारा।
पता नही कितने जन्मों का,
सदा रहा है साथ तुम्हारा।

परिवार को सुखमय बनाने का दायित्व सबका होता है। घर एक मंदिर है, हम उसके पुजारी। आये दिन माँ-बहन आदि होते कलह से पीड़ित कवि पत्नी को समझाता है एक दिन तुम भी माँ बनोगी, यदि तुम्हारे साथ यही हुआ जो तुम कर रही हो तुम्हें कैसा लगेगा-

लेकिन माँ के प्यार के आगे,
कुछ बच्चे झुक जाते हैं।
माँ होती ममता की देवी,
तुम भी अच्छी माँ बन जाओ।

कवि मधुर बोलने के लिए प्रेरित करता है और कहता है कि कोयल के बोल बोलो। सबकी प्यारी बन जाओगी-

तेरे कटु वचनों से,
भाई बन्धु सभी ख़फ़ा हैं।
माता-पिता दुखी रहते,
इनकी तुम्ही दवा हो।

कवि का मानना है कि बच्चों को प्यार दिया जाए पर आवश्यकता से अधिक नहीं। अनुशासन में रखना अतिआवश्यक है। ज़्यादा लाड प्यार बच्चों को निरंकुश कर देते हैं-

बचपन में वाचाल बहुत थी,
बहिनों में बड़ियार बहुत थी।
संस्कार संगत की न्यारी,
माँ की बहुत दुलारी थी।
मात-पिता की बातों में,
कुछ उल्टा बोल दिया करती,
जिसको सुन माता,
मन में मोद भरा करती।
बचपन की वह चतुराई,
आज बहुत अखरे।

अंत में पत्नी पति के प्रेम से हार मानकर सुखमय दांपत्य जीवन व्यतीत करने की दृढ़ संकल्प हो नया जीवन जीना चाहती है-

प्रेम धरा के नव कगार पर,
अब से मेरा स्वर सुधरे।
शाश्वत प्रेम जगत जीवन,
जिसने उर में बसा लिया।
सेवा कर मेवा मिलता है,
यह भाव सदा पसरे।

'नर सेवा नारायण सेवा' को अपने जीवन का एक महान उद्देश्य मान शेष मधुर जीवनयापन हेतु संकल्पित होती है।

डॉ. राममूर्ति त्रिपाठी द्वारा रचित "अन्तर्वेदना स्वर" की भाषा शुद्ध खड़ी बोली, सरल व सरस है। शीर्षक सर्वथा उपयुक्त व प्रासंगिक है। आद्यन्त पाठक के मन में कौतूहल पैदा करने में समर्थ रचना है। बड़ी रचना करना बड़ी बात नही होती, जितना बड़ा आदमी होना। आदमी बड़ा होने की पहली शर्त है अहंकार का न होना और दूसरी शर्त है आडम्बर और आत्मश्लाघा से दूर रहना। ये दोनों ही बातें डॉ. राममूर्ति त्रिपाठी जी में है। इस महान कर्मयोगी रचनाकार के स्वस्थ, सुखी, समृद्ध, दीर्घ जीवन की मंगल कामना करते हुए इनके श्री चरणों को कोटिश: नमन।

सुदामा राम विश्वकर्मा
प्रवक्ता, बापू इण्टर कॉलेज सादात गाजीपुर
एवं संस्थापक, डॉ. एस नाथ इण्टर कॉलेज
मरदापुर सादात, गाजीपुर

~~

मंगलवाक

करुण क्रन्दित हृदय संवेदना से निःस्यूत स्वानुभव और जागनिक अनुभीतियों से अनुस्यूत भावनाएँ जब किसी सहृदय के उच्छ्वास से उद्वेलित चित्र को द्रवित करने लगती है तो शब्द स्वर का स्वरूप बनकर कविता का रूप बनकर कविता का रूप ग्रहण करती है। कवि का सुकोमल मन मानवीय सद्भावनाओं आदर्शों और मानव मूल्यों के अंतजील से ग्रसित हुआ जब किंकर्तव्यविमूढ़ की स्थिति में आरूढ़ होता है तो कविता का आश्रय ही उसे सम्बल प्रदान करता है और वह उसी प्रवाह में प्लवन करता हुआ नानाविधि विसंगतियों और विध्न बाधाओं को समुत्तीर्व कर, जीवन यापन के कंटका कीर्ण अनेक मार्गो पर संचरण करता है। कृत्यकृत्य, पवित्र और निवृत्ति के अन्तर्द्वन्द्वों में अयन निर्मल उदात्त चरित्र को सुदृढ़ कर यथेष्ट कर्म को विधिवत संवहन करता है। कवि की पीड़ा ही कविता का सहारा पाकर उसे मान, अपमान, उपहास, उपेक्षा, आदर, अनादर, सौभाग्य, दुर्भाग्य, न्याय, अन्याय, शंका, सत्य, विश्वास, स्वार्थ, प्रेम, घृणा, मुश्किल, मज़बूरी, दुःख, दर्द, सुख, शांति, अनुमान जैसी अनन्य विसंगतियों से संघर्ष करती हुई सन्मार्ग पर चलने का सदुपदेश देती है। वही यथावसर पाथेय बनकर कवि को आत्मबल प्रदान कर उसके स्वाभिमान को बचाती है। कवि ही वह संज्ञा है जिसके जीवन में तनाव है, संघर्ष है, पीड़ा है, दुःख है, दर्द है, सहनशीलता है, धैर्य है, अनुशासन है और समाज को सीखने और सीखाने की क्षमता है तभी तो किसी कवि ने कहा है,

'राम तुम्हारा नाम स्वयं ही काव्य है,
कोई कवि बन जाये सहज सम्भाव्य है।।'

राम के जीवन में त्याग ही उनका आदर्श है। सुख और दुःख में समभाव होना ही रामत्व है। वही उनका आदर्श है।

"रामादिवत कर्तिकव्य न च रावण दिवत्"

डॉ. राममूर्ति त्रिपाठी द्वारा प्रणीत "अन्तर्वेदना के स्वर" यह काव्य कृति वस्तुतः कवि के जीवन की यथार्थ अनुभूतियों की प्रमाणित प्रतिलिपि है।

डॉ. राजेंद्र तिवारी (रसराज)
इलाहबाद डिग्री कॉलेज

~~

रचनाकार की क़लम से

समाज एक सुस्थिर शांत विकासोन्मुखी मिली-जुली सतत् चलने वाली समुचयित व्यवस्था है जो समाज के हर पहलू को प्रत्येक अंग को अपने में समेटे हुए परिवार के हर बिन्दूओं पर विहंगम दृष्टि रखता है। जीवन प्रकृत प्रदत्त प्रत्येक झंझावातों के क्रोड में ऐसा क्रम है जब निरंतर अहर्निश चलता ही रहता है। निश्चय ही समाज का हर व्यक्ति अपने मर्यादा का निर्वाह येन-केन-प्रकारेण करता ही रहता है। यह सत्य भी है कि वह उसके बिना रह नही सकता। प्रकृति का विकासोन्मुखी नियम अकाट्य है। प्रकृति और पुरुष का विधान उसकी अपरिमेय शक्ति का द्योतक है और उसका मिलन सृजन का स्रोत है। एक बिना दूसरा अधूरा-सा प्रतीत होता है। मानव मन अपने-अपने ढंग से चलता है। वातावरण संस्कार संगत का प्रभाव अवश्यम्भावी है उसी में उसके प्रत्येक बिंदु का सृजन होता है। उसमें उसके निर्माण बिना विकास-विनाश और उन्नति-अवनति के ताने-बाने गुने जाते हैं।

व्यक्ति का निर्माण उसके लगन परिश्रम और कार्य क्षमता पर निर्भर करता है। मन का मिलन सदा एक रस हो, शान्ति पूर्ण हो और विकासोन्मुखी हो। यह हर समय हर कही हर परिवार में समान रूप से सम्भवतः पूर्णरूपेण सर्वकालिक दृष्टिगोचर नहीं होता। इसका कारण मत भिन्नता के साथ सहन शीलता का अभाव ही माना जा सकता है और मन भिन्नता ही विरोधी विचार, विरोधी भाव दैनिक जीवन में किसी न किसी रूप में परिलक्षित होता है। यह व्यक्ति के स्वभाव संस्कार और वातावरण पर निर्भर करता है। परिवार व समाज में शांतिपूर्ण व प्रेम स्नेह से मिलजुल कर रहने का भाव उत्पन्न होता है।

प्रस्तुत रचना का लक्ष्य रंच अन्तर्द्वन्द्वों का उद्धरण प्रस्तुत करते हुए उसके हल का निवारण खोजना और उसका दिशा निर्देश कहाँ से प्रारम्भ हो उसका एक उचित मार्ग सहज प्रेम प्रदर्शन के साथ भावोन्मुखी एकत्व की ओर परिवार को ले जाने के प्रयास में गुम्फित है। मैंने देखा और परखा की समाज में शादी बाद(विवाहोपरांत) यो तो परिवार सुंदर ढंग से स्नेहपूर्ण वातावरण में चलता है। भावनाएँ एक-दूसरे से मेल खाती हुई उत्तरोत्तर बढ़ती है परंतु इसका अपवाद भी यत्र-तत्र देखने को मिलता है, ऐसा सर्वकालिक नही होता। किसी न किसी विषय पर विरोधाभास बढ़ते-बढ़ते परिवार में इतना दुरूह स्थिति उत्पन्न करता है की एक विकट वितण्डा खड़ा कर देता है की परिवार में टुटन-घुटन विक्षेदन तक की स्थिति उतपन्न हो जाती है । यह स्थिति परिवार समाज के लिए एक विडंम्बना ही है जिसमें व्यक्ति को येन-केन प्रकारेण जीना ही पड़ता है परंतु कभी-कभी किसी मोढ़ पर अत्यधिक विरोध होने पर व्यक्ति(पति या पत्नी) सोचने के लिए विवश होते हैं और अपने मन में समाधान का एक मार्ग सुस्थिर करने को सोचते है। क्यों न कुछ धैर्य रखा जाये एवं बर्दास्त करने के साथ-साथ मन की कटुता और कुढ़न को दरकिनार करते हुए मिलकर प्रेम से जीवन गुज़ारने का प्रयास किया जाये। इससे इतर कुछ दम्पति ऐसे भी होते है जिनमें एक-दूसरे के प्रति प्रेम-मोहब्बत के स्थान पर कुंठाग्रस्त स्थिति में जीवन व्यतीत करने की बाध्यता बन जाती है यह सोच बनाना स्वभाविक है कि कभी भाव पुरुष या महिला दूरदृष्टि से मन को समझाकर देश काल परिस्थिति के अनुसार मन की भिन्नता को दूर करने का प्रयास करता है।

प्रस्तुत रचना इसी प्रकार के भाव के परिणति है जिसमें समाज और देश का भी ध्यान रखा गया है, तभी उसका स्वरमुखरित हो कह उठता है कि "कितना प्यार तुम्हें मैं दे दूँ हो जाओ तुम मन की मेरे"। मन को अनुकूल बनाने में ही परिवार की शान्ति निहित है। तभी परिवार के प्रत्येक व्यक्ति का उत्तमोत्तम निर्माण सम्भव है। उसी में प्यार है जीवन के सुख समृद्धि का राज है। उसी में विकास की सम्पूर्ण परलब्धियां सन्निहित है। मैंने देखा कि समाज में पति-पत्नी के बीच का अन-बन, बात-बात पर विकराल झगड़े के कारण परिवार के शांतिपूर्ण वातावरण को विषाक्त बना देता है। यह विषाक्त वातावरण ही परिवार के टूटने का, कष्टदायक स्थिति का कारण बनता है। इसकी वजह कुछ भी हो सकता है परंतु पुरे घटना क्रम को हृदयंगम किया जाये तो निश्चय ही इसके निवारण का एक सुस्थिर का दीर्घकालिक राहत या समाधान का मार्ग मिल सकता है।

व्यक्ति की सोच बनती बिगड़ती रहती है और अंतोगत्वा दीर्घकालिक राह की तलाश करता हुआ लक्ष्य तक पहुँचने में सफल हो सकता है। ऋषियों महर्षियों द्वारा निर्देशित मार्ग व संदेश का अनुशरण एक प्रसस्त शांतिपूर्ण जीवन का आधार सुनिश्चित करने में सहायक हो सकता है परंतु यह तब सम्भव है जब मन में गहरी सोच हो और उसे अवधारित करने की प्रबल इच्छा शक्ति हो तब प्रेरणा की किरण निरन्तर किसी-न-किसी रूप में दृष्टिगोचर होती है जो इसके क्रोढ में प्रच्छन्न रूप से अंतःकरण में भावी जीवन के प्रत्येक पहलू पर विचार करने सहायक हो। यही दिशा, दृष्टिकोण किसी-न-किसी पक्ष (पति या पत्नी) द्वारा समाधान प्रस्तुत हो। यह पारिवारिक सम्बन्ध ही जीवन के शांति, समृद्धि के लिए निश्चय ही आवश्यक है। इससे इतर प्रभाव के वसीभूत पारिवारिक विश्रृंखलता के

मूल कारण बनते है। इस दिशा में परिवार समाज व देश के बहुआयामी उन्नति-अवनति का विश्लेषण समाधान प्रबुद्ध वर्ग को खोजना चाहिए। जो समय सापेक्ष परिस्थिति जन्य के कारण के निवारण में साध्य हो।

प्रत्येक व्यक्ति चाहे वह किसी भी स्तर का हो उसमें परिवार (पति-पत्नी, बच्चे और वृद्ध जनों) के साथ-साथ समाज व देश के प्रत्येक अंग के सुख-दुख के विषय में यथा समय चिंतन करता ही है। यही कारण है कि व्यक्ति में सबके प्रति दया-प्रेम के भाव का उद्रेख होता है और विरोधी भाव विरोधी कर्म नगण्य हो जाता है और वह मानव मात्र के भलाई की चिंता करता है।

यह बात सत्य है कि आज भौतिकता हर कही व्याप्त है, प्रत्येक व्यक्ति पर हाबी है व परिवार में भी यदा-कदा दृष्टिगोचर होता ही नही वरन सर्वमान्य हो गया है परंतु अभाव किसी-न-किसी प्रकार से प्रत्येक व्यक्ति को प्रयत्नशील रखता है। कुछ लोग इसके अपवाद हो सकते हैं, परंतु ऐसे लोग नगण्य होते हैं। ऐसा कोई नहीं जो यह हर प्रकार उपक्रम नहीं करता की आज से आगे आने वाला कल बेहतर न हो

डॉ. राममूर्ति त्रिपाठी
टांडा बैरख
सादात गाजीपुर

~~

आभार

रचना के विषय में अपने गणमान्य सहयोग के विषय में आभार व्यक्त करता हूँ। इस क्रम में माननीय कविवर हरिनारायण सिंह "हरीश" जी एवं कविवर डॉ. राजेंद्र त्रिपाठी प्रवक्ता डिग्री कॉलेज इलाहाबाद का हृदय से आभारी हूँ जिन्होंने मुझे अच्छा सुझाव और कुछ संसोधन करके रचना में सजीवता लाये। अपने अल्प संसाधनों से सर्वतोमुखी विकास के लिए समर्पित लगनशील माननीय श्री सुदामा राम विश्वकर्मा प्रवक्ता बापू इंटर कॉलेज सादात गाजीपुर को मैं साधुवाद देता हूँ जो रचना के संदर्श में सर्वोत्तम विचार दिए। श्री सुदामा जी सबके लिए प्रेरणा स्रोत स्तुत्व हैं जो वर्तमान भौतिकवादी परिवेश में डॉ. एस नाथ इण्टर कॉलेज मरदापुर सादात गाजीपुर संचालित कर रहे हैं, ईश्वर उन्हें इस विद्यालय के माध्यम से उत्तरोत्तर राह प्रशस्ति करने का शक्ति दें। इस रचना के संबंध में गंभीरता की दृष्टि से बहुत कुछ प्रेरणा प्रदान किये। माननीय कन्हैया लाल गुप्त अध्यापक एवं कवि जनता इण्टर कॉलेज जंगीपुर गाजीपुर एवं माननीय श्री प्रभुनाथ दुबे प्रवक्ता बापू इण्टर कॉलेज सादात गाजीपुर का हृदय से आभार व्यक्त करता हूँ जिन्होंने मुझे बच्चे की तोतली बोली समझ प्रेरणादायी भावों से अनुगृहीत किये। बालक केशव विवेकी जिनकी अब तक दो पुस्तकें सीखने में ही प्रकाशित हो चुकी हैं, आपका धन्यवाद करता हूँ जो आप मेरी पुस्तक प्रकाशन में लगकर महत्वपूर्ण योगदान दिये। अंत में उन सभी साथियों मित्रों और परिस्थितियों का आभारी हूँ जो किसी-न-किसी प्रकार से प्रेरणा स्रोत रहे। उन परिस्थितियों का भी ऋणी हूँ जो कुछ लिखने की प्रेरणा प्रदान किये।

डॉ. राममूर्ति त्रिपाठी
टांडा बैरख सादात
गाजीपुर

~~

रचना के संदर्भ में विचार

समाज विभिन्न अन्तर्द्वन्द्वों से भरा पड़ा है। हर व्यक्ति किसी न किसी रूप में दोहरा जीवन जीने को बाध्य है। व्यक्ति अपने मन की अन्तर्दशा को मर्यादा के आवरण से ढककर चलता है और संतुष्ट जीवन जीने का दिखावा करने की पूरी कोशिश करता है।

कभी-कभी वह असहन पीड़ा को सहन न कर सकने के कारण आत्महन्ता तक का कठोर निर्णय भी ले लेता है, जिसे कायरता की संज्ञा दी जा सकती है, परंतु "अनभिज्ञता का कष्ट मरण के कष्ट से भी भयंकर होता है।" समाज को यह सत्यज्ञात है तब भी उस आत्महन्ता की मरणोपरान्त अपने-अपने ढंग से लोग व्याख्या करते हैं। मेरी समझ से अव्यक्त कष्ट का अभिव्यक्तिकरण इसका निवारण हो सकता है।

"अन्तर्वेदना के स्वर" के रचनाकार का भी मत कुछ इसी से मेल खाता है और परिणामस्वरूप यह रचना आकार ले पायी। यद्यपि यह पारिवारिक वितण्डा व उसके समाधान का एक प्रयास है, भाषा कुछ सामान्य ही है परंतु इसके भाव पर ध्यान दिया जाये तो भाषा का सामान्य होना विशेष ध्यान देने योग्य चीज नहीं है। इसे प्रथम प्रयास मानकर, प्रोत्साहित करना ही श्रेयस्कर है। शुभकामना है कि इससे उत्तम कोटि की रचना का आस्वादन करने का अवसर प्राप्त होगा।

प्रभुनाथ दूबे
प्रवक्ता, बापू इण्टर कॉलेज
सादात गाजीपुर

~~

अन्तर्वेदना के स्वर

कि तना प्यार तुम्हें मैं दे दूँ,
हो जाओ तुम मन की मेरे।
आखिर मैंने कौन कर्म कर,
पाया तुम जैसी पत्नी।
जोड़ अयाचित दुर्भाग्यों को,
दिया ईश ने ऐसी यत्नी।
यह जीवन का मझधार हो गया,
आगे विकट पहाड़ हो गया।
कितना प्यार तुम्हें मैं दे दूँ,
हो जाओ तुम मन की मेरे।।
जब भी मैं अच्छा कहता हूँ,
उसका उल्टा सदा किया है।
अनजाने में रोष बढ़ाया,
सीधे मन को सजा दिया है।
जीवन कंटक भरा हो गया,
आगे चलना दुश्वार हो गया।
कितना तुम्हें दुलारूँ मैं अब,
हो जाओ अनुकूल हमारे।
कितना प्यार तुम्हें मैं दे दूँ,
हो जाओ तुम मन की मेरे।।
चलना ही प्रतिकूल हमारे,
सदा रहा है लक्ष्य तुम्हारा।
प्रतिकुलों सा वचन तुम्हारा,
तोड़ा साहस सदा हमारा।
जीवन मैं कैसे जीऊँगा,
फिर कितने पेबंद सिलूँगा।
जितना सिलता जीवन कथरी,
रह जाती है सदा अधूरी।
बहुत प्यार तुम्हें दिया है,
खुश होना तेरी मर्जी।
कितना प्यार तुम्हें मैं दे दूँ,
हो जाओ तुम मन की मेरे।।
बड़ी प्रवीणा हो तुम मन की,
अपना काम बना लेती हो।
मेरी बारी जब आती है,
चेहरा तब लटका लेती हो।
दिल की मज़बूरी किसे दिखाऊँ,
किससे कहूँ व्यथा मैं अपनी।
कहते-कहते जीवन भर की,
बुढ़ी हुई व्यथा यह अपनी।
सब कुछ खोकर पड़ा किनारे,
हो जाओ मनमीत हमारे।
कितना प्यार तुम्हें मैं दे दूँ,

हो जाओ तुम मन की मेरे।।
परदे के पीछे से लगता,
कोई कुरेद रहा है।
मन खुला द्वार जभी,
कोई गुरेज रहा है।
अंतस का हूँ बहुत सरल है,
जीवन बन गया गरल है।
गुस्सा आता बहुत मगर,
होता ढीला सुबह सबेरे।
कितना प्यार तुम्हें मैं दे दूँ,
हो जाओ तुम मन की मेरे।।
रहा सजग सदा मगर,
अपनों से ही छला गया।
कर्मों को बहुत पिरोया,
जीवन को बहुत संजोया।
मन को समझाते-समझाते,
मग में अब तक रहा अधूरे।
कितना प्यार तुम्हें मैं दे दूँ,
हो जाओ तुम मन की मेरे।।
पर उत्साह नही हारा हूँ,
चलते जाना लक्ष्य हमारा।
पता नही कितने जन्मों का,
सदा रहा है साथ तुम्हारा।
अब आगे का जन्म बनाएँ,
आओ उजड़ रहे इस घर को,
मिलकर हमसे खूब सजाओ।
पुरखों की मर्यादा निखरे,
कितना प्यार तुम्हें मैं दे दूँ,
हो जाओ मनमीत हमारे।।
बड़ी प्रगति प्रत्याशा में,
शादी कुछ लोग नहीं करते।
मन में उमंग उत्साह लिए,
उन्नति पथ पर बढ़ जाते।
मैं तो शादी करके अब,
निशदिन पछताय रहा हूँ।
जनम हुआ बेजार अभी से,
दर-दर खाक छान रहा हूँ।
कैसे होहि गुज़ारे,
कितना प्यार तुम्हें मैं दे दूँ,
हो जाओ मनमीत हमारे।।
शादी उनके न करने का,
शायद लक्ष्य यही है।
रोक लगेगी उन्नति में,
लगती बात सही है।
तुम जैसी अड़चन वाली,
आ गयी कही घर में घरवाली,

झगड़े माँ-बहन, भाभी से।
कौन करें निशदिन रखवाली,
बोलो कैसे? पथ सुधरे।
कितना प्यार तुम्हें मैं दे दूँ,
हो जाओ मनमीत हमारे।।
लेकिन माँ के प्यार के आगे,
कुछ बच्चे झुक जाते हैं।
माँ की सबल साधना को,
कभी नही ठुकरा पाते हैं।
माँ होती ममता की देवी,
तुम भी अच्छी माँ बन जाओ।
घर की तनातनी मिटाओ,
घर में जलती आग बुझाओ।
कभी नही तुम घबराओ,
मन को मार प्रथा सुधरे।
कितना प्यार तुम्हें मैं दे दूँ,
हो जाओ मनमीत हमारे।।
मैंने तो शादी किया सोचकर,
संगिनि साथ निभाएगी।
मन में उत्कंठा ढेरों थी,
क़दम से क़दम मिलाएगी।
भावी जीवन उत्कर्ष देख,
शादी तो मैंने कर ली।
माँ की इच्छा पूर्ण किया,
पर लगता मन की बलि दे दी।
आओ मन का सपन सँवारें,
हो जाओ मनमीत हमारे।।
लेकिन इसका अपवाद बहुत,
हर समाज में मिलता है।
बहुतों का शादी बाद प्रगति का,
द्वार निरन्तर खुलता है।
पति-पत्नी का प्यार प्रेरणा,
निशदिन उन्हें बढ़ाता है।
शुभ कर्म और अथक साधना,
उत्तम पथ-धर्म निभाता है।
बनो प्रेरणा सदा हमारा,
जीवन पथ मेरा सँवरे।
कितना प्यार तुम्हें मैं दे दूँ,
हो जाओ मनमीत हमारे।।
देखो कुछ लोग जहाँ में,
बड़े प्यार से रहते हैं।
शान्ति सुरभिमय जीवन उनके,
स्वर्णिम सुख पाते हैं।
आखिर गृहस्थ का लक्ष्य यही,
शाश्वत मोक्ष जीवन आधार।
नईया खींच किनारे कर ले,

डूब न जाये ये मझ़धार।
जीवन शांतिपूर्ण गुज़ारें,
हो न कलह हे प्यारे।
कितना प्यार तुम्हें मैं दे दूँ,
हो जाओ मनमीत हमारे।।
जब तुम पहली बार बहू बन,
मैके से ससुरे आई।
घर आँगन ख़ुशहाल हुआ,
बजी थी घर में शहनाई।
माँ का हृदय बहुत मगन था,
पिता बहुत हर्षाएं।
बहने प्यार से तुम्हें निहारें,
खुशियों में नाची भौजाई।
उस दिन का मान करो रे पगली,
कितना तुमको याद दिलाऊँ,
मन की व्यथा हरे।।

बड़ा रसीला चहेरा तेरा,
और रसीली मोहक वाणी।
अपने सेवा धर्मों से,
सदा तू लगती कल्याणी।
लेकिन कभी कठोर वचन कह,
मेरा हृदय व्यथित करती हो।
कभी थका-हारा आने पर,
मेरा हृदय व्यथित करती हो।
कितना बता मधुरता घोलूँ,
रोजाना मैं शाम सबेरे।
कितना प्यार तुम्हें मैं दे दूँ,
हो जाओ मनमीत हमारे।।
जीवन का क्रम नही रुकेगा,
जब तक भू आकाश रहेगा।
तुम न रहोगी मैं न रहूँगा,
लेकिन यह इतिहास रहेगा।
जितनी तुम कटु वचन बोलती,
उतना मैं आहत रहता हूँ।
अनायास उल्टी वाणी पर,
कितनी निज हिंसा करता हूँ।
आखिर इसकी परिणति कैसी,
होगी तुम, ज़रा विचारों।
कितना प्यार तुम्हें मैं दे दूँ,
मेरे मन की व्यथा हरे।।
क़दम-क़दम लाचार हो रहा,
बाजी जीवन की हार रहा।
कब तक बाजी हारूँ मैं,
कब तक स्वयं सँभारूँ।

त्याग-तपस्या का क्षण जीवन,
कब तक बंधन ढारूँ।
खुशियों की बारी जब आई,
चिंतन में समय गुज़ारूँ।
घर का कल्याण विचारें,
कितने तुम्हें बताऊँ साथी,
मन की व्यथा हरे।।
मन को मझधार में बोरों नहीं,
हे साधों! साध के साध न साधों।
सपनों को न तोड़ों-जोड़ों सम्हार के,
जग जनम दोबारा न होगें हे राधे।
सात जनम का प्रेम उड़ेल दो,
सराबोर धन्य हो जीवन मेरे।
तुम धन्य हो, यह जीवन धन्य हो,
धन्य समाज में नाम हो तेरे।
शेष जनम का प्रेम मरा,
सन्देश लिए चले ईश के आगे।
जग जनम दोबारा होंगे न होंगे,
सोचो ज़रा दिन-रात हे राधे।।
सोचो न आगे-पीछे कभी चलाना है,
जग में आगे ही आगे।
ईमान धर्म को बचाएँ चलो,
उसका कभी हानि न होने पाएँ।
देश धरम कर्तव्य निभाएँ,
राष्ट्र धरम पर बलि-बलि जाएँ।
अहो भाग्य होय हमार तोहार,
संतान तोहार सदा गुण गाएँ।।
झगड़ा और मन मलिनता,
किसको सम्मान दिया है।
घर समाज में नित अन-बन,
सब में बिलगाव किया है।
मन मलिनता झगड़ा से,
बनता काम बिगड़ता है।
आक्रोश, तनाव की वेदी पर,
संबंधों का तार बिखरता है।।
उन्नति का यह राह नही,
शांति बिना निर्वाह नही।
प्रखर कर्म की वेदी पर,
प्रतिपल चढ़ने का सार नही।
प्रेम का सार बहा रे,
उन्नति का पथ सँवरे।
कितना तुम्हें बताऊँ साथी,
मन की व्यथा हरे।।
तेरे कटु वचनों से,
भाई बन्धु सभी ख़फ़ा है।
मात-पिता दुखी रहते,

इसकी तुम्ही दवा हो।
गुरु, पितु, मातु, बन्धु की सेवा,
सदा सुखों की खान यही।
धरती पर सेवा से बढ़ कर,
कोई अच्छा दान नही।
माँ कहती बबुआ तू,
पत्नी के समझावा।
घर में शांति सदा रहे,
आँगन बगिया महकावा।।
घर परिवार एक मिलकर,
गाँव, शहर देश बनता है।
सहनशील प्राण एकता,
सरस श्रेष्ठ सम्बल है।
मन का भाव सदा सरस,
देश प्रेम उन्मेष प्रखर हो।
सत्कर्मों की अलख जगाओ,
पग-पग प्रेम मुखर हो।
पूरे होंगे जीवन के सारे,
प्यारे सपन तुम्हारे।।
शांत हृदय दीपक जलने से,
रोशन होता भव्य भवन है।
घर के प्राणी शांत सुखी हो,
जैसा स्वच्छ शांत गगन है।
गरिमा इसमें तेरा मेरा,
मेरा यह चिंतन है।
उल्टी वाणी छोड़ अभी से।
हो जाओ सिरमौर हमारे,
कितना प्यार तुम्हें मैं दे दूँ,
हो जाओ तुम मन की मेरे।।
हृदय की गहराई में यदि छिपी प्रेम भाषा,
कटुता क्रूरता क्यों बनती दुराशा।
होता गर पल-पल प्यार मन मंदिर में,
कटु वचनों की कभी करता न आशा।।
शोषण के विरुद्ध हमारी,
हरदम रही लड़ाई।
मानव के कल्याण में ही,
अपनी भरी भलाई।
भ्रष्टाचार अनाचार, दुराचार पसरे,
देख नही सकता मैं, इनके पांव पड़े गहरे।
हम सब घर में लड़कर ही,
कैसे सब दूर करेंगे।
मानवता के दुश्मन से,
बोलो कैसे हम लोग लड़ेंगे।
मिलकर ही दुष्कर्मों से,
जब सब लोग लड़ेंगे।
घर-घर होगा ख़ुशहाल,

पावनता लहरे।। कितना तुम्हें बताऊँ......
देवों का यह देश हमारा,
देवियाँ यहाँ पूँजी जाती।
मातृशक्ति नाराज न हो,
इस पर दृष्टि रखी जाती।
पर विधर्म की तीव्र हवा ने,
इस पर तीव्र प्रहार किया है।
संस्कार की टुटन-घुटन,
सुनों बड़ा चीत्कार किया है।
कैसे व्यभिचारी सुधरे,
कितना तुम्हें बताऊँ साथी,
मन की व्यथा हरे।।
चेतना समाज व देश की न होती जहाँ,
मूर्खों की टोली वहाँ भुगने समान है।
आदमी की भाँति सारे जीव को न जाना जो,
दिखावा दया, प्रेम, भक्ति कोरी कल्पना है।।
लक्ष्मी विष्णु ईश की पत्नी,
सारे जग की पालनहार।
पार्वती शंकर अर्द्धांगिनी,
करती सब लोकों से प्यार।
सियाराम, राधिकाकृष्ण की,
प्यार कहानी जानो।।
जग के पालन हार वही,
दिल से तुम पहचानो।
होंगे कल्याण हमारे,
कितना प्यार तुम्हें मैं दे दूँ,
हो जाओ मनमीत हमारे।।
देव सदा अराध्य हमारे,
उनकी यहाँ पूजा होती।
और शक्ति प्रतिमा भी,
घर-घर में रखी जाती।
जहाँ नहीं देवी रहती,
देव वहाँ नहीं रहते।
जिस घर में दोनों जाते,
अमृत रस वे बरसाते।
हे पीयूष वर्षिणी,
सबका सब कष्ट हरे।
कितना प्यार तुम्हें मैं दे दूँ,
हो जाओ तुम मन की मेरे।।
मातु-पिता, भाई-बहने,
सब तेरे साथ पड़े हैं।
ज़रा प्रेम से बात करो,
सब तेरे साथ खड़े हैं।
कितना ख़ुश तेरा घर आँगन,
कितनी प्यारी चहल-पहल।
थोड़ा-ही त्याग तुम्हारा,

भर देगा घर का हर कोना,
गृहस्थ जीवन का सार प्रेम।।
राम कृष्ण की धरती यह,
पूर्वज की निष्ठा में है।
संस्कृत अपनी बड़ी सजीली,
घुल मिल कर रहने में है।
अध्यात्म चेतना प्रखर साधना,
जीवन तप करने में है।
यदि यह भाव शुद्ध सरल,
सबके उर में बस जाए।
देव सदा उसमें निमग्न हो,
घर समाज गमक जाए,
भक्ति शक्ति छहरे।
कितना तुम्हें बताऊँ साथी,
जीवन भर तन-मन सुधरे,
हो जाओ मनमीत हमारे।।
मैंने तुझको समझ लिया,
तुम भी मुझको समझो।
मेरे हाथ पकड़ने का,
मर्म ज़रा तुम समझो।
जीवन नैया पार सरल हो,
और सरस हो पानी,
बच्चों को तेरे कारण।
हो न कहीं हैरानी,
मैं तो यही चाहता तुमसे।
बदले यह संस्कार तुम्हारा,
बच्चों तो ताड़ना न देना।
देना सद्व्यवहार उन्हें,
खिलते सुरभियुक्त पुष्पों को।
होने दो सदाबहार उन्हें,
सम्बल है ये तेरे मेरे यह।
यह और समाज की थाती,
पुरखों के संस्कार युक्त।
इस घर के दीपक बाती,
बाती की ज्योति बढ़ा रे।
कितना तुम्हें बताऊँ साथी,
दिल की राह मिले।।
चलते-चलते अगर राह में,
पैर में काँटे चुभ जायें।
दोनों प्राणी बैठ राह में,
उसको तुरन्त निकाले।
पीड़ादायक हो न कही वह,
इसको ज़रा समझाना।
संघर्षों में पांव बढ़ा,
कष्टों को हँसकर सहना।
उत्कर्षों पर ध्यान रहे,

सोचो सुबह सवेरे।।
हाथ पकड़ने की मर्यादा,
दोनों का सच्चा व्यवहार।
जीवन नौका पार करें हम,
यही सृष्टि उत्तम आधार।
जग में मिल हम नाम कमाएँ,
नव प्रीत भरा व्यवहार।
घर में उमड़े प्यार सदा,
कितना पावनता लहरे तुम्हें बताऊँ साथी,
हो जाओ मनमीत हमारे।।
एक मित्र को देखा मैंने,
सुन लो उनकी करुण कहानी।
घर में पति के आते ही,
व्यंग्य बाण चलते हैं।
प्रेम भाव को छोड़ सभी,
आपस में खूब झगड़ते हैं।
यद्यपि है वह सहनशील,
सबका सब सुनते सहते हैं।
लेकिन घर का कोना-कोना,
हर रोज़ यही पूछता।
झगड़ा उत्पात भरा जीवन,
घर में कैसे समय गुज़ारें।
कितना तुम्हें बताऊँ साथी,
मन की व्यथा हरे।।
घर में पति के आते ही,
पत्नी बोली ज़रा कड़क कर।
कहाँ-कहाँ जाते रहते हो,
किससे क्या बातें करते।
सोच नही सकते तुम,
सबकी सब बातें सुनते।
कुछ अपनी भी बात उन्हें बताओ,
अन्यों के भड़काने पर।
घर में तुम मत आग लगाओ,
सच्ची बातें करो सभी से,
जिससे घर सुधरे।
कितना तुम्हें बताऊँ साथी,
मन की व्यथा हरे।।
पति बेचारे शांत सरल,
सबकी सब सुन लेते।
पर कभी-कभी आक्रोश में आकर,
कटु वचन रोष में कह देते।
पुनः सफाई देकर कहते,
मैंने कही न बात किया है।
केवल शंका में तुम मरकर,
घर में त्राण्डव मचा दिया है।
शंका कर झगड़ा करने से,

पहले, सदा सत्य को जानो।
विश्वास करो सदा अपनो पर,
दिल से सबको पहचानो,
विश्वासों की धार बहा रे।।
लड़े पतोहू सदा सास से,
क्या? यह शोभा देता है।
गरिमा हो न जहाँ बड़ो की,
क्या समाज कहता है।
तेरा-मेरा, मेरा-तेरा,
होना ठीक नहीं है।
जिसके खाने में स्वाद नहीं,
वह अच्छी दही नहीं है।
शंका से मुक्त रहो रे,
कितना तुम्हें बताऊँ साथी,
मन की व्यथा हरे।।
पति-पत्नी को दोष लगाये,
पत्नी-पति को भरमाये।
कैसे शांति रहेगी,
जीवन की सारी घड़ियाँ।
यदि ऐसे ही बीतेगी,
अरमान बिखर जायेगा,
सर्वस छीन जायेगा।
भिन्न-भिन्न मत होने से,
सब कुछ मिट जाएगा।
निश्छल भाव बहा रे,
कितना तुम्हें बताऊँ साथी,
जिससे घर सुधरे।।
सुनो न गुनो करो थोड़ा विचार,
हे सुंदरि मेरी बात सुनो।
सुनो न गुनो है मर्जी तोहार,
परिवार सँवारनी हेतु कहूँ।
प्रेम से रहना समाज के साथ,
हमार गरज परिवार के खातिर।
बात बताऊँ आओ मेरे साथ,
समाज की रीति पुनीति सम्हारो।।
संघर्षों में साथ निभाना,
दम्पतियों की रीति रही है।
कटु विरोध के कारण ही,
कितनों की जान गयी है।
गुस्सें में पागल होता मन,
कुछ भी कर लेता है।
घर की मधुर-मधुर बगिया में,
बरबस आग लगा लेता है।
उन दम्पतियों से मैं कह दूँ,
बहुत हुआ, अब न चढ़े।
भौहों के कोर तुम्हारे,

कितना तुम्हें बताऊँ साथी,
मन की व्यथा हरे।।

पति-पत्नी विद्वेषों से,
दम्पति जान गँवाते है।
अपने तो जाते जग से,
बच्चों की बलि चढ़ाते है।
करो कल्पना उस क्षण की,
जब कोई आग लगा जलता।
मत्सरता की पीड़ा को,
भावों की भेंट चढ़ा देता।
जलना कटना कायरता है,
यह प्रवंचना सुधरे।
कितना तुम्हें बताऊँ साथी,
मन की व्यथा हरे।।
गलती का एहसास मनुज को जब-जब होता है,
आंदोलित होता सशंक वह ख़ुशियाँ तब-तब खोता है।
भाव प्रबल सशंय का मन में, जब घर कर जाता है,
नर-नारी क्या पशु-पक्षी भी घोर अनर्थ कर जाता है।।
जितना प्यार तेरा फूलों से,
उतना उपवन है गुलजार।
जितनी उनकी सेवा करती,
यदि देती सबको सत्कार।
करती उनकी जैसी रखवाली,
घर का सम्मान सँवारों,
कूड़ा खाना बने न कोना।
घर को घुर से उबारों,
घर आँगन में बच्चों की।
बगिया लहर-लहर लहरे,
कितना तुम्हें सिखाऊँ साथी,
मन तेरा सुधरे।।
माँ तो सदा समर्पित रहती,
प्रकृति सम्पदा से भरपूर।
जीवन देकर सदा निछावर,
करती रहती तन, मन, धन खून।
माँ का जीवन, जीवन बच्चों का,
सृष्टि सार का मूल।
संचालित सारा समाज है,
माँ के ही सब फूल।
त्याग तपस्या की बेढ़ी पर,
जीवन जग में सँवरे,
हो जाओ मनमीत हमारे।।
घर को आदर्श बना दो देवी,
कोना-कोना चमका दो।
फुलवारी के फूलों सा,

घर आँगन महँका दो।
मिले तुम्हें अमरत्व यहाँ,
मेरे दिल की अभिलाषा।
जग में जितने भी दम्पति है,
पूरी हो सबकी अमर पिपासा।
मात-पिता वृद्धों की सेवा,
ऋषियों का संदेश रहा।
इस अमर-अमृत वाणी को,
जिसने उर में धारा।
अभिशाप मिटा क्लेष भगा,
पावन घर वार धरा।
संस्कार यह टूट रहा,
कैसे अब सम्हरे।
कितना तुम्हें बताऊँ साथी,
मन की व्यथा हरे।।

मेरी बातों का तुम पर,
यदि कोई नही पड़ा असर।
समझाता आया हूँ सब दिन,
फिर भी कोई रही कसर।
चलो साधु संगत में साथी,
कर लो मन का दम्भ शमन।
उनकी भक्ति भरी वाणी से,
होगा तेरा भाव नमन।
मंजिल जीवन की दूर बहुत,
सोचो अब साँझ सबेरे।
कितना प्यार तुम्हें मैं दे दूँ,
हो जाओ मनमीत हमारे।।
चलो निकलकर घर से बाहर,
घर-घर में अलख जगायें।
सेवा कर हर दुखिया की,
दिल की व्यथा मिटाएँ।
जीवन के आदर्श धरा पर,
अपना सद्धर्म निभाएँ।
सब जीवों को समरस कर,
गीता का ज्ञान सिखाएँ।
वेद पुराणों की भाषा,
उपनिषदों का स्वर लहरे।।
अच्छी सभी पत्नियाँ अपने,
पतियों का भाव समझती।
अच्छी पत्नी होकर तुम,
क्यों मेरा भाव नही समझती।।
श्रेष्ठ पत्नियां धर्म समझ,
पति की सेवा करती है।
किस धर्म के नाते तुम,

मेरा अनर्थ करती हो?
बोलो! कैसे पथ सुधरे।
शांति से जीवन गुजरे,
कितना प्यार तुम्हें मैं दे दूँ,
हो जाओ तुम मन की मेरे।।
पति का अर्थ समझती हो,
जिसको इज्जत कहते है।
'नी' का अर्थ रखने वाली,
सज्जन सभी समझते है।
दो शरीर जब एक आत्मा,
मिल समाज में रहते है।
अंश हृदय की ब्रम्ह चेतना,
धरती पर स्वयं सरसते है।
जीवन का आधार प्रेम है,
धरती का कण-कण सरसे,
कितना प्यार तुम्हें मैं दे दूँ,
हो जाओ तुम मन की मेरे।।
आप मेरे प्रियवर प्रियतम,
सर्वोत्तम पति मैं मानी हूँ।
जीवन का निर्वाह आप हैं,
इसको रग-रग में ढाली हूँ।
आप बिना मेरा जीवन,
कभी न होगा अब पूरा।
सृष्टि की रचना का लक्ष्य,
ब्रह्म का होगा सदा अधूरा।
ब्रह्म का लक्ष्य निखरे,
मन की व्यथा हरे।।

क्‍या आप बिना मेरा जीवन,
कभी अभाव से होगा पूरा।
सृष्टि का निर्माण ब्रह्म का,
होगा सदा-सदा अधूरा।
अधूरे को पूर्ण करो रे,
बन जाओ मनमीत हमारे।
सदा त्याग कच्चे धागे पर,
प्रेम लता चढ़ती है।
और सरस शीतल छाया में,
सर्वोपरि तक चढ़ती है।।
जहाँ ध्येय मानव जीवन का,
प्रेम अमर बन जाता है।
लक्ष्य ईश के द्वारा पहुँच,
धन्य-धन्य हो जाता है।
पुरुष प्रकृति की प्रेम सम्पदा,
सृष्टि का आधार प्रखर।
प्रस्फुटन हो रहा है क्षण-क्षण,

दोनों के संयोग निखर।।

सृष्टि नियम के साथ होती,
अंतिम परिणति निर्विवाद।
चल रहा प्रकृति की छाया में,
परिदृश्य में हो कुशल विराट।।
प्रेम प्रभावी बातों से,
मैं पत्नी धर्म निभाऊँगी।
राष्ट्र धर्म समाज चेतना,
घर-घर में फैलाऊँगी।
मेरा देश प्रेम अमर,
दुनिया को राह दिखायेगा।
सब जीवों में प्राण चेतना,
अमर-अमर बन जायेगा।
अमरत्व की राह निखरे,
मन की व्यथा हरे।।
धर्म अर्थ कम मोछ,
अभिलाषा सबकी रहती है।
सत्य कर्म और धर्म चेतना,
जीवन भर उज्वलित रहती है।।

जिनके मूक वन्दना में,
होती ईश्वर की पुकार।
तप लगन और साधन में,
शांति का देती पुरस्कार।
तुम भी सोचे मैं भी सोचूँ,
कैसे पार लगेंगे नदिया गहरी भँवर तेज है।
आवर्त सघन है बारम्बार,
कितना तुम्हें बताऊँ साथी,
मन की व्यथा हरे।।
मुझको आप बहुत समझाए,
कुछ मेरी भी तो सुनिए।
जीवन में अड़चन बहुत मगर,
मेरा भी तो गुनिए।
वाणी का दोष बहुत मगर,
यह मैं भी सोचा करती हूँ।
किसी समय इसका परिमार्जन,
मैं भी मन में करती हूँ।
लेकिन आपके आते ही,
बरबस बात नही सम्हरे।
कितना और बताऊँ साथी,
मन की व्यथा हरे।।
बचपन में वाचाल बहुत थी,
बहिनों में बड़ियार बहुत थी।

संस्कार संगत की न्यारी,
माँ की बहुत दुलारी थी।
मात-पिता की बातों में,
कुछ उल्टा बोल दिया करती।
जिसको सुन मेरी माता,
मन में मोद भरा करती।
बचपन की वह चतुराई
रह-रह आज बहुत अखरे,
कितना तुम्हें बताऊँ साथी,
मन की व्यथा हरे।।
किसी-किसी बात पर प्रियतम,
मन मलीन बहुत रहता है।
घर में ऐसे उठा पटक पर,
मन मेरा सोचा करता है।।
मन में उठते उद्गार बहुत,
कुछ करने को जी करता।
पर, आगे पीछे सोच बहुत,
मन मेरा शांत शमन करता।
उच्छृंखल यदि होती मैं,
इज्जत जाती घरे-घरे।
कितना तुम्हें बताऊँ साथी,
मन की व्यथा हरे।।
मेरी बातें सुनकर जब,
आप आपे से बाहर होते।
जग में उस कड़ुवाहट को,
मैं मुखर नही होने देती।
तय करती आने पर उनके,
मन से सेवा खूब करूँगी।
प्रेम हृदय की मधुरिम रस,
उनको आज पिला दूँगी।
होगी नही शिकायत जब,
कैसे तब तन-मन बगरे।
कैसे तुम्हें बताऊँ साथी,
मन की व्यथा हरे।।
बैठ प्रेम से जब मैंने,
कह दी अपनी सत्य कहानी।
सुन-सुन कर मेरे साथी,
मोद हृदय में भर ली।।
कहने लगे ज़रा तुम फिर से,
जीवन रहस्य अपना बतलाओ।
बढ़ते रोज़ वितण्डा का,
जड़ मुझको समझाओं।
छोड़ों अभी बताती हूँ,
विह्वलता मेरी बगरे।
कितना तुम्हें बताऊँ साथी,
मन की व्यथा हरे।।

क्या कहूँ! मेरे प्रियतम,
मेरे पर कुछ विश्वास करो।
उसके पहले मत कुछ कहिये,
मन में ही अनुमान करो।

बचपन की आदत की पूँजी,
जो लेकर ससुराल में आई।
मात-पिता की प्यारी बन,
उल्टी वाणी सीख आई।
कभी-कभी डाँटे सुनकर भी,
वह गाँठ नही उधरे,
कितना तुम्हें बताऊँ साथी,
मन की व्यथा हरे।।
जीवन भर उल्टी बोली,
काम बात से नही शरमाई।
सच में तुमको बहुत सताई।
गई प्रीत की सभी कमाई,
भूल-चूक सब बिसरा कर।
मन वाणी से अब इज्जत की,
जिस पथ से मैं गुजरूँ ।
प्रेम धरा के नव कगार पर,
अब से मेरा स्वर सुधरे।
कितना तुम्हें दुलारूँ साथी,
मन की व्यथा हरे।।
अब मैं बहुत सँभलती हूँ,
करती कोशिश बारम्बार।
फिर भी लँगड़ी आदत से,
कभी-कभी होती लाचार।
मैंने जीवन सुखा दिया,
गयी जवानी अनमन प्यार।
जीवन शुष्क रहा साथी,
मेरा तन, मन, आधार।
सुख रही जीवन की बगिया,
अब कैसे होहिं हरे।
कितना तुम्हें बताऊँ साथी,
मन की व्यथा हरे।।
बचपन की राह प्यार में,
गलत सही जो बन जाती।
मात-पिता और बड़े जनों की,
उस पर दृष्टि नही जाती।
धीरे-धीरे बच्चों में वह,
संगत की आदत बन जाती।
प्रच्छन्न या की मुख सम्मुख,
बच्चों में जिच बन जाती।
बड़े नही जब समझाएं,

वह राह कहो कैसे सुधरे।
कितना तुम्हें बताऊँ साथी,
मन की व्यथा हरे।।
बच्चों के हर हरकत पर,
यदि बड़े ध्यान देते रहते।
श्रेष्ठ जनों की सत्य कथा से,
संस्कार सदा भरते रहते।
राह से बच्चे नही भटकते,
जीवन उनके उज्ज्वल होते।
राष्ट्र-प्रेम, समाज-स्नेह से,
सदा-सदा भरे रहते।
शिक्षा का मान बढ़ा रे,
उनके नव जीवन सँवरे।
कितना तुम्हें बताऊँ साथी,
मन की व्यथा हरे।।
बनते प्रवीण किसी कला से,
कभी न उनके राह भटकते।
परिवार समाज राष्ट्र में,
उनके नाम अमर होते।
ऐसे उन्नतिशील व्यक्ति से,
प्रेरणा सदा सभी लेते।
कुछ इच्छा करने की,
ख्वाईश कर्तव्य सभी करते।
समाज राष्ट्र का पथ सँवरे,
सबके सब जीवन सँवरे।
कितना तुम्हें बताऊँ साथी,
राष्ट्र प्रेम निखरे।।
गलती का एहसास
मनुज को जब-जब होता है,
आंदोलित होता सशंक,
खुशियाँ तब-तब खोता है।
खोजा करता समाधान,
तब इधर-उधर सोचा करता,
होगी कैसी परिणति इसकी
दिल चिंता से भर जाता।।
न्याय भागता सद्विचार,
हृदय कबूला करता है।
कोने में बैठ कभी-कभी,
मन दवाग्नि सा जलता है।
अंतिम विकल्प बचने का,
जब उसको मिल जाता है।
विवेकपूर्ण मर्यादा को,
बुद्धिमान सुलझाता है।
लेकिन कभी-कभी उनको,
जब सद्विचार नही मिलता।
दिग्भ्रमित कुंद बुद्धि से,

मृत्यु का सदा वरण करता।।
रही पराई-सी घर में,
जब-जब मेरा अनबन होता।
बच्चे सब देखते तमाशा,
मन उनका व्यथित होता।
कोने में बैठ सिहर सभी,
क्या-क्या सोचा करते होंगे।
मात-पिता के झगडे को,
क्या-क्या कैसे गुनते होंगे।
सोच-सोच कर सभी वितण्डा,
दिल मेरा नित सिहरे।
कितना तुम्हें बताऊँ साथी,
मन की व्यथा हरे।।
यद्यपि उनकी सोच न बदले,
झगड़े की पड़े न परछाई।
थोड़ी देर शांत होने पर,
गोंद में लेकर समझाई।
किसी-किसी बात पर बेटा,
मेरा विरोध हो जाता है।
मैं समझाती वह न समझें,
तब सरोष बढ़ जाता है।
छोटा बच्चा बोल पड़ा,
माँ तूँ क्यों टटरे।
कितना तुम्हें बताऊँ साथी,
मन की व्यथा हरे।।
कैसी पत्नी मन की होगी,
मैं भी वैसी बन जाऊँ।
उलझन वाले कष्ट पलों में,
हरदम साथ निभाऊँ।
तुम पर अर्पण मेरा जीवन,
बलि-बलि तुम पर जाऊँ।
बातों में सदा समन्वय होगा,
यदि विरुद्ध होऊँ तो शरमाऊँ।
भूले सभी विगत वितण्डा सब,
अब से यह जीवन सुधरे।।
सुखी जीवन का स्रोत पुरुष,
पत्नी सहभागी बनती।
दुःख के बंधन तोड़ प्यार से,
सुख का सौरभ भरती।
चलो लीक से हटने का,
थोड़ा अफ़सोस जाता ले।
साथ-साथ चलने की अब,
दिल से कसमें खाले।
आप हमारे जीवन साथी,
दिल की साध सदा सँवरे,
हो जाओ मनमीत हमारे।।

मन के मानसरोवर में,
बूँद-बूँद एक छंद बन गया।
प्रेम पलों की अनुभूति,
क्षण-क्षण का आनंद बन गया।
हर्षित मन प्रश्न पूछता,
हर समाज की पीड़ा।
घनीभूत है द्वंद यहाँ,
हर प्राणी की बीड़ा।
ढूढ़ना होगा हल इसका,
पैठ-पैठ गहरे।
कितना और सँभालूँ साथी,
जीवन पथ सुधरे।।
मेरे अटपट वाणी से,
जब आप आपे से बाहर होते।
मन के कड़ुवाहट को हम,
अब मुखर नहीं होने देते।।
स्वाभिमान नारीत्व हमारा,
सर्वोपरि जीवन आधार।
जिसकी रक्षा नित करना ही,
नारी का अधिकार है।
धरती की धारित्र साधना,
घर बाहर निखरे।
कितना तुम्हें मनाऊँ साथी,
मन की व्यथा हरे।।
मेरी उल्टी बातों से,
जब क्रोध आप बहुत करते।
तब मन मार सोच-सोच कर,
चुप ही रहना सरल समझती।
चुप रहना आक्रोश शमन,
मेरा शांत सरल व्यवहार।
बदल रही हूँ अब से,
अपना पारिवारिक आधार।
साधना सरस बनूँ अब से,
साथी का सम्बल सँवरे।
कितना तुम्हें बताऊँ साथी,
मन की व्यथा हरे।।
श्रद्धा और सरल जीवन,
लज्जा ही सौंदर्य है।
बिता युग ऋषित्व चेतना,
सार्वभौमि औदार्य है।
सारी धरती पर नारी,
सृष्टि की अनुपम थाती है।
सेवा भक्ति शक्ति चेतना,
जीवन की जलती बाती है।
ब्रह्मा की इस श्रेष्ठ सृजन का,
आओ हम उद्धार करें।।

ऐसे ही दुर्लभ उपन्यास (Novel) ,

प्रेरणादायक पुस्तक

(Motivational Book) ,

प्रीमियम बुक , प्रीमियम मैगजीन ,

और अन्य सभी तरह के ,

कहीं पर भी ना मिल पाने वाले

उपन्यास

और साहित्य को पढ़ने के लिए हमारे

टेलीग्राम ग्रुप और चैनल में

अवश्य जुड़े ।

नीचे दिए गए लिंक के माध्यम से

आप हमारे ग्रुप और चैनल

में जुड़ सकते हैं

https://t.me/hindilibrary

https://t.me/requestbookpdf

चैनल में जुड़ने के लिए

लिंक पर Click करें👇👇👇

https://t.me/books_request

English Books 📚

https://t.me/Google_Ebooks

नारी गृहस्थ देव मंदिर की,
विग्रह पवित्र होती है।
किंतु हृदय यदि भंग हुआ,
संभली नही वदन से।
मंदिर की टुटी प्रतिमा को,
जैसे भक्त नही पूजते।
वैसे गृह मंदिर में नारी,
कभी पूज्य नही होती।
सूचिता धूमिल रहती है,
मन मलिन रहता है।
आओ दोनों मिलकर सम्मान करें,
हो जाओ मनमीत हमारे।।
सेवा के प्रति सदा समर्पण,
जिसने जीवन में सीख लिया।
नर क्या सारी वसुधा के,
जीव-जीव को जीत लिया।
शाश्वत प्रेम जगत जीवन,
जिसने उर में बसा लिया।
सेवा कर मेवा मिलता है,
यह भाव सदा पसरे।।
तुम दुर्गा, लक्ष्मी प्रतिरूपा,
विज्ञ सरस्वती सी हो तुम।
जीवन का वरदान यशस्वी,
जग की सुफल पयस्वती।
ब्रम्हा की हो श्रेष्ठ कृति,
संचालिका जीवन क्रम।
जग में जीवन का अभिनव,
नव सृजन स्रोत निर्भ्रम।
सृजन का श्रृंगार बनो,
सतियों का यश सँवरे।।
नारी का नारीत्व सती बन,
जब भी जग में छाया।
अनुसूइया ने तीनों ईश को,
सत् से शिशु बनाया।
हलराया पलने में उनको,
सतीत्व सार दिखाया।
स्त्री होकर ईशत्रीय को,
जग को मर्म बताया।
सतीत्व की महिमा अपार,
क्यों न पत्नियां धारें,
हो जाओ मनमीत हमारे।।
सीता ने सुख चैन त्याग,
सास-ससुर घर मोह छोड़।
भोग महल कुछ भी न भुलाया,
श्रेष्ठ सभी सुख चैन भुलाया।
वनवासिन बन वन को,

खुशी-खुशी पति साथ चली।
एक भूल के कारण सीता,
बन में छली गयी।
अपहर्ता रावण द्वारा,
पंचवटी में छली गयी।
दारुण दुःख पति वियोग में,
लंका में उसने बहुत सहा।
लंकापति के रुक्ष वचन सुन,
उसको तृण समान कहा।।
रावण के धृष्ट वचन सुन,
दृढ़ स्वर में बोली सीता।
हमने धर्म निभाया है,
धर्म ही हमें बचायेगा।
मेरे पत्नी धर्म निभाने पर,
तुमने क्यों यह अधर्म किया है।
शर्म नही आती है तुमको,
मुझको धोखे से हर लाया।
चोरी फरेब छद्म वेश में,
मुझको तुने भरमाया।
ऐसा करो सुनो रावण,
अपना दर्प तेरा सम्भालों।।
पति विहीन लक्ष्मीबाई(झाँसी की रानी),
नारी की शान बढ़ाई ।
जीते जी ना चुनी गुलामी,
मृत्यु को गले लगाई।
वीरांगना झाँसी की वह,
अंग्रेजों संग लड़ी लड़ाई।
अपनी शान देश की खातिर,
रण में तलवार उठाई।
उर में देश-प्रेम लहरे,
दृढ़ संस्कार सँवरे।
कितना तुम्हें बताऊँ साथी,
आगे उन्नति पथ निखरे।।
अवगुण आठ सदा नारी के,
रावण ने बतलाये।
मंदोदरी के समझाने पर,
उसे बहुत भरमाये।
उस सती की बात न माना,
सीता सती को धमकाया।
हरम में लाने को उनको,
बहुत-बहुत डरवाया।
हनुमान की सीख सभा में,
उसने बहुत नकारे।।
अपना सत्कर्म निभाने से,
पाप पुण्य की परिभाषा।
पश्चयाताप से परिभाषित,

मिटती नही पिपासा।
पाप भगे औ ज्योति जगे,
समाज शिष्ट बने सुखदाता।
हर प्राणी समरस हो जाये,
सबकी सदा यही अभिलाषा।
सुचिता पुण्य के उर में,
निर्झर प्यार बहा रे,
हो जाओ मनमीत हमारे।।
सादा जीवन उच्च विचार,
गाँधी का संदेश रहा।
तुमको इस आदर्श वचन को,
हरदम मन में रखना है।
झूठे आडम्बर के पीछे,
पड़कर तुम्हें न मरना है।
जिससे राष्ट्र धर्म की टूटे कभी दीवारें,
थोड़े में निर्वाह करें।
संतोष की राह दिखा रे,
हो जाओ मनमीत हमारे।।
कभी भूलकर मात-पिता संग,
तुम रुखा व्यवहार न करना।
बहनों को अपने घर में,
दो दिन का मेहमान समझना।
अपने वृद्ध पिता संग,
जैसा प्यार सदा करती हो।
वैसे मेरे वृद्ध पिता को,
अपना पिता समझना।
रिश्तों के निर्वाहों से ही,
खुशियाँ लेहि हिलोरे,
हो जाओ मनमीत हमारे।।
गृहस्थ जीवन में झंझटों की भीड़ होती है,
परिवार में ही लम्पटों की नींव होती है।
जो झंझटों, लंपटों से अतीत होता है,
उसी का जीवन शांति से व्यतीत होता है।।
तुम हो सदा बहारों वाली,
तुम हो सदा सहारों वाली।
नर के अन्तस की मुरीद हो,
वर्षा की सुखद फुहारों वाली।
तुम हो सरिता की रसधार,
झर-झर झरनों की फुआर।
ब्रम्हा की सर्वोत्तम रचना,
नर के सुख-दुख की पुकार।
संसृत की संस्कृति सँवरे,
हो जाओ मनमीत हमारे।।
वाणी का तप, मन का तप,
गृहस्थी एक तपस्या है।
तप शरीर के जीवन हित,

अच्छी एक परीक्षा है।
अन्तर्मन की साध्य चेतना,
उर गंभीर सत् चित अपार।
लेता है आनन्द हिलोरे,
पल-पल खुले मोक्ष का द्वार।
मोक्ष का राह सदा सुधरे,
हो जाओ मनमीत हमारे।।
यह जीवन एक प्रसाद प्रभु का,
मान के ध्यान में धारण कीजै।
विषाद बना प्रतिकूल का कारण,
अकारण विषाद को जन्म न दीजै।
अनुकूल प्रसाद प्रभु का प्रभो,
अब प्रीति की रीति प्रगाढ़ बनावा।
स्थिर हो यह जीवन धन्य,
प्रत्यक्ष सभी अंधियार भगावा।।
गृहस्थ जीवन में झंझटों की भीड़ होती है,
परिवार में ही लम्पटों की नींव होती है।
जो झंझटों लम्पटों से अतीत होता है,
जीवन उन्ही का शांति से व्यतीत होता है।।
यह जीवन अधपका चावल है,
इसको तप से तपाओ।
धर्म कर्म(सत्य प्रेम) की औषधि डालों,
स्नेह से इसे सजाओ।।
जग में जैसे आये है,
वैसे ही सबको जाना है।
शुभ कर्मों की वेदी पर,
गौरव की गाथा गाना है।
यश अपयश साथ चलेंगे,
अंतिम चला चली में।
जैसा कर्म किये रहेंगे,
चर्चा होगी गली-गली में।।

***

ऐसे ही दुर्लभ उपन्यास (Novel) ,

प्रेरणादायक पुस्तक

(Motivational Book) ,

प्रीमियम बुक , प्रीमियम मैगजीन ,

और अन्य सभी तरह के ,

कहीं पर भी ना मिल पाने वाले

उपन्यास

और साहित्य को पढ़ने के लिए हमारे

टेलीग्राम ग्रुप और चैनल में

अवश्य जुड़े ।

नीचे दिए गए लिंक के माध्यम से

आप हमारे ग्रुप और चैनल

में जुड़ सकते हैं

https://t.me/hindilibrary

https://t.me/requestbookpdf

चैनल में जुड़ने के लिए

लिंक पर Click करें👇👇👇

https://t.me/books_request

English Books 📚

https://t.me/Google_Ebooks

रचनाकार का परिचय

नाम- डॉ. राममूर्ति त्रिपाठी

पिता - स्व० पंडित बेचन त्रिपाठी

माता- स्व० धानेश्वरी देवी

पत्नी- कमला त्रिपाठी

जन्मतिथि- १० जुलाई १९३७

ग्राम- टांडा बैरख पोस्ट- अकबरपुर, तहसील- जखनियां, जनपद गाजीपुर, यूपी- २७५२०४

शिक्षा– बी.ए, हिंदी ऑनर्स (काशी हिंदू विश्वविद्यालय, १९५७), एम.ए, हिंदी (मेरठ विश्वविद्यालय, १९६९), आयुर्वेदारत्न हिंदी विश्वविद्यालय प्रयागराज।

सेवाएँ- १९६० में मलेट्री में टेक्निकल असिस्टेंट, १९६५ में होमगार्ड में अध्यापन कार्य, अक्टूबर १९६६ से जुलाई १९९५ तक मेडिकल हेल्थ एंड फॅमिली प्लानिंग डिपार्टमेंट यूपी में स्वास्थ्य शिक्षा अधिकारी के पद पर कार्य किए। अब सेवानिवृत्त। सामाजिक सेवा व साहित्यिक सेवा में रचनात्मक कार्यरत।

~~